SWAR SINDHU: NATIONAL PEER-REVIEWED/REFEREED JOURNAL OF MUSIC
A UGC CARE LISTED JOURNAL
ISSN 2320-7175 (O) | VOLUME 12, ISSUE 03, DECEMBER, 2024
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org

भारतीय संगीत में शिक्षण पद्धतियाँ: एक अवलोकन

DR. MADHUMITA BHATTACHARYA

Assistant Professor, Department of Vocal Performance, Faculty of Music and Performing Artsए Kashi Hindu University, Varanasi-

सार

शिक्षण एक द्विध्रुवीय प्रक्रिया है जो शिक्षक व शिक्षार्थी अथवा गुरु व शिष्य के माध्यम से सम्पन्न होती है। अतः शिक्षा एक चेतन एवं विचारपूर्ण प्रक्रिया है इसमें कर्ता एवं कर्म, साध्य एवं साधक का सम्बन्ध होता है। ‘‘प्राचीन धार्मिक पौराणिक आख्यानों के अनुसार सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी से संगीत कला की शिक्षा लेकर भरत और उनके सौ पुत्रों ने गन्धर्वों, किन्नरों और अप्सराओं की सहायत से उसे शंकर के समक्ष प्रस्तुत किया। इन नाट्य प्रयोगों से आनंदित शंकर ने अपने प्रिय और प्रमुख गण तंडु मुनि को आदेश दिया कि वह भरत और उनके साथियों को तांडव नृत्य की विधिवत् शिक्षा दें। दूसरी ओर, पार्वती ने लास्य नृत्य का सृजन कर उसकी शिक्षा वाणासुर की पुत्री उषा को दी। भरत के सौ पुत्रों द्वारा नाट्य कला और तांडव नृत्य का ज्ञान पृथ्वीवासियों को मिला तो उषा का विवाह जब कृष्ण के पौत्र अनिरूद्ध से हुआ तो उषा के माध्यम से इस नृत्य कला की शिक्षा धरतीवासियों को मिली।1 इस प्रकार हम देखते हैं कि देवताओं की यह दिव्य कला एक दूसरे को शिक्षित और प्रशिक्षित करते हुये हम लोगों तक पहुँची है। प्राचीन काल में संगीत शिक्षण गुरु का शिष्य को विद्या दान करना और शिष्य द्वारा शिक्षा ग्रहण करने की परम्परा ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य था। अपने विकास क्रम में शिष्य ही गुरु बन जाता था। इस प्रकार विद्या की परम्परा उत्तरोत्तर आगे बढ़ती गयी और इसी परम्परा के क्रम में स्वयं ज्ञान भी विकसित होता गया।

कुंजी शब्द *- भारतीय संगीत संगीत, शिक्षा, शिक्षण पद्धति, गुरु, शिष्य।*

भूमिका

शिक्षा शब्द बहु अर्थी है। भाषा शब्द कोष के अनुसार इसका अर्थ है- किसी विद्यार्थी के सीखने-सिखाने की क्रिया, पढ़ाई उपदेश, सीख, तालीम, गुरु के समीप विद्याभ्यास इत्यादि। प्रसिद्ध जर्मन शिक्षा शास्त्री पेस्टलॉजी के अनुसार शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक, सम्यक् और प्रगतिशील विकास है।[2] ‘‘उसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है।’’[3] वास्तव में शिक्षा केवल ज्ञान अथवा जीविका का उपार्जन नहीं है वरन् शिक्षा सम्पूर्ण जीवन के परिष्कार एवं विकास की प्रणाली है। शिक्षा का उद्देश्य मानवीय जीवन का चारो ओर से अधिक से अधिक विकास करना है। संगीत द्वारा स्मृति, कल्पना और रचना-शक्ति का विकास होता है। गाते बजाते समय गायक अथवा वादक नई-नई कल्पनायें करता रहता है और उसी समय उन्हें राग का साकार रूप प्रदान करता है और उसी समय उन्हें राग का साकार रूप प्रदान करता है। भारतीय संगीत की यह विशेषता होती है कि गायक की कल्पना और उसकी अभिव्यक्ति में सदैव नवीनता रहती है। संगीत के विद्यार्थी को नैतिकता और अनुशासन का पाठ पढ़ाया जाता है। संगीत शिक्षा विद्यार्थी की कल्पना शक्ति का विकास करती है। विद्यार्थी के स्वास्थ्य में वृद्धि करती है। इसके अतिरिक्त संगीत शिक्षा द्वारा नैतिकता, नागरिकता, राष्ट्र प्रेम आदि सद्गुणों का बीजारोपण, हीन भावना का निष्कासन आदि संभव है। संगीत शिक्षा का शैक्षिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक महत्व है।

‘‘सन् 1911 में गुरु रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शांति निकेतन में, गाँधी जी ने 1915 में सत्याग्रह आश्रम में संगीत शिक्षण प्रारंभ कराया।’’[4] उत्तर प्रदेश तत्कालीन यूनाइटेड प्राविन्सेज में सर्वप्रथम 1916 में कायस्थ पाठशाला इलाहाबाद में संगीत की कक्षायें खोली गई तथा 1925 में अन्य स्कूलों में और लगभग प्रत्येक स्कूल, कॉलेज तथा विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों मे संगीत विषय का समावेश हो गया है।

वैदिक युग में संगीत शिक्षा संबंधी विवरण प्राप्त होता है उसके अन्तर्गत किसी विद्यालय अथवा पाठशाला नाम का उल्लेख नहीं है और न ही कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या आदि का विवरण प्राप्त होता है। संगीत आदि कलाओं की शिक्षा व्यक्तिगत रूप से दी जाती रही और इसे ही गुरु शिष्य परम्परा के नाम से संबोधित किया गया। विद्या का आदान-प्रदान गुरु-शिष्य के माध्यम से संचालित होना ही भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताओं में से एक है। संगीत शिक्षा का ज्ञान गुरुमुख के द्वारा प्रत्याक्षिक दिया जाता था। गुरु, विनय और साधना ये तीनों शब्द इस परम्परा में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखते थे। प्राचीन काल में विद्यार्थियों को संगीत शिक्षा सामान्य विद्या मन्दिरों तथा संगीत शालाओं में भी दी जाती रही। गुरु अपनी विद्या में पारंगत होते थे और कुछ शिष्यों को ही स्वीकार करते थे। द्रव्य अर्जन का कोई प्रश्न ही नहीं था। अतः

संगीत प्रशिक्षण निष्काम भाव से होता था। उस समय संगीत प्रशिक्षण निष्काम भाव से होता था। उस समय संगीत की जिस रूप में व्यवस्था थी वह व्यक्तिगत थी। शिष्य की निष्ठा इत्यादि गुणों की कसौटी पर खरा उतरने के बाद ही शिष्य को स्वीकार किया जाता था। संगीत शिक्षा गुरू पर निर्भर करती थी। पाठ्यक्रम जैसी कोई वस्तु न थी और न ही बंदिश लिखने के लिये स्वरलिपि पद्धति की सुविधा थी। संगीत के क्रियात्मक पक्ष पर अधिक बल दिया जाता था।

''मध्य काल में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि संगीत की शिक्षा देने का प्रचार रहा होगा।''[5] श्री भगवत शरण शर्मा जी के अनुसार राजपूत जितने शूरवीर थे उतने ही संगीत प्रेमी थे। राजदरबारों में कलाकारों को राजाश्रय मिला। स्त्रियाँ भी सुशिक्षित होती थीं। संगीत की शिक्षा उनकी शिक्षा का अभिन्न अंग थी। संगीत के राजाश्रय प्राप्त होने के कारण ही वह पनप सका किन्तु जन साधारण में संगीत का कोई प्रबन्ध था या साथ ही संगीत शिक्षा का स्वरूप क्या रहा, अर्थात् संगीत शालाएँ थीं या व्यक्तिगतरूप से गुरु-परम्परा के द्वारा संगीत शिक्षा प्राप्त की जाती थी किंतु इस बारे में कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता। संगीत के प्रचार व प्रसार हेतु राजाओं ने अत्यधिक प्रयत्न किये। जिनमें राजा मानसिंह तोमर व मुगल सम्राटों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। ''राजा मानसिकं तोमर संगीतज्ञों का मान सम्मान करते थे। उनके दरबार में गुणी संगीतज्ञ रहते थे। उसमें बैजू, चरजू, बख्शू के नाम विशेष उल्लेखनीय है। कहा जाता है इन्होंने संगीत की संस्था स्थापित किया था। इस संस्था में चार संगीतज्ञ थे जिनका कार्य संगीत सुनाना और गुणीजनों के समक्ष संगीत गोष्ठी का आयोजन करना था तथा संगीत की समस्याओं पर वाद-विवाद और विचार विनिमय होता था।''[6]

इस युग की संगीत शिक्षण प्रणाली के संबंध में हमें अबुल फ़ज़ल द्वारा लिखित 'आइने अकबरी' नामक ग्रन्थ में मिलता है। संगीत शिक्षण की यह प्रणाली सबसे प्राचीनतम एवं सर्वश्रेष्ठ प्रणाली भी मानी जाती है। यह पद्धति गुरुकुल पद्धति कहलाती थी। गुरुकुल का अर्थ है गुरु के सानिध्य में रहकर शिक्षा प्राप्त करना, इस पद्धति में गुरु सर्वप्रथम सातों स्वरों का अभ्यास करवाता था फिर आगे का पाठ दिया जाता था। ताल और लय की शिक्षा भी साथ-साथ चलती थी। शिक्षण व्यक्तिगत तथा सामूहिक दोनों प्रकार से दिया जाता था। पाठ्यक्रम जैसी कोई वस्तु नहीं थी और न ही संगीत की बंदिश को लिखने के लिये स्वरलिपि जैसी कोई वस्तु थी। शिष्य गुरुमुख से शिक्षा प्राप्त करता था। प्राचीन काल में शिक्षा विद्यार्थी आश्रमों में रहकर गुरु-शिष्य परम्परा से ही ग्रहण करते थे। ''इसलिये प्राचीनकाल से ही संगीत विद्वान संगीत भी शिक्षा शिष्यों को सीना ब सीना देते थे। इन्हीं से आगे चलकर गुरुओं के नाम पर अनेक सम्प्रदाय और मत स्थापित हुये।''[7]

संगीत क्रियात्मक कला होने के कारण सब बातें लिखी नहीं जा सकती। इसलिये गुरु-शिष्य परम्परा का विशेष महत्व है। स्वर लगाव, बंदिश का प्रस्तुतिकरण, राग की शुद्धता, उसका व्याकरण, आकार का सही रूप, तानों की विविध प्रकार, बोल बाँट, लय की सूक्ष्मता आदि बातों में गुरु का मार्ग दर्शन अत्यंत आवश्यक होता है। गुरु शिष्य परम्परा में शिक्षा प्राप्त करने के लिये कहीं-कहीं गंडाबन्धन की प्रथा भी प्रचलित थी। इस परम्परा में शिष्य अपनी सामर्थ्य के अनुसार उपहार स्वरूप कुछ द्रव्य वस्त्रादि गुरु को अर्पित करता था। गुरु-शिष्य की कलाई में धागा बाँधते और कुछ श्लोक का उच्चारण करते। यह बन्धन अत्यंत पवित्र माना जाता था। शिष्य को गुरु की सेवा करनी पड़ती थी। गुरु भी सिखाने में कोई भेद भाव नहीं रखेगा तथा शिष्य को संपूर्ण शिक्षा प्रदान करेंगे। दोनों एक-दूसरे के प्रति वचनबद्ध होते थे।

गुरु-शिष्य परम्परा के गुण एवं दोष भी हैं। इस परम्परा में व्यवहारिक संगीत अर्थात् क्रियात्मक पक्ष तो उत्कृष्ट कोटि का होता था, परन्तु शिष्यों को शास्त्र पक्ष का ज्ञान अति अल्प होता था। इसके अतिरिक्त शिक्षा प्रदान करने की जैसी इच्छा होती, वे वैसा ही प्रशिक्षण दे दिया करते थे। इस शिक्षण प्रणाली में समय अधिक लगता था, परन्तु शिष्य पूर्ण रूप से तैयार होकर निकलते थे। शिष्य को कठोर नियमों का पालन करना पड़ता था और अनुशासन में रहना पड़ता था। यह शिक्षण पद्धति कलाकार बनाने में अनुकूल थी। इस शिक्षण पद्धति के कई गुण थे तो इसमें कई कमियाँ भी थीं। शिष्य अपने गुरु से अपनी ओर से कुछ नहीं पूछ सकता था। गुरु अपने शिष्यों को अपनी इच्छानुसार प्रशिक्षण देते थे। शिष्यों को सभी गृह कार्य करने पड़ते थे और जब कार्य से छुट्टी मिलती थी तब गुरु सीखाते थे।

घराना पद्धति एक ऐसा संगीत है जो अविच्छिन्न परम्परा से पीढ़ी दर पीढ़ी संगीतज्ञों में हस्तान्तरण होता रहा है। घराने से तात्पर्य किसी विशिष्ट गुरु परम्परा से है। घराना एक विशिष्ट गायन, वादन तथा नृत्य शैली का सूचक होता है। यह शैली जिसे कलाकार के द्वारा प्रवर्तित होता है, वे

ही उसके संस्थापक माने जाते हैं और उन्हीं के नाम से घराने का नामकरण होता है। घराना परम्परा में शिक्षण अत्यंत गहराई से होता था। इसी कारण इसमें शिक्षित शिष्य भी कुशल कलाकार बनकर निकलते थे, उन्हें गुरु के समक्ष बैठकर सीखने का अवसर मिलता था। अतः परंपरा में शिक्षा प्राप्त करने के लिये सर्वप्रथम स्वर साधना से प्रथम पाठ प्रारंभ होता था। जिसमें सुर भरना, आवाज लगाने का ढंग, आवाज का उतार-चढ़ाव, स्वर प्रयोग आदि की शिक्षा दी जाती थी। इसके बाद राग विस्तार, आलाप, तान, बोलतान, सरगम तान, लयकारी का विविध प्रयोग आदि की शिक्षा दी जाती थी। घरानेदार गुरुओं का यह विश्वास होता था कि एक ही राग के सीखने से दूसरे राग स्वतः ही आ जाते हैं। एक साधे सब सधे, सब साधे सब जाये। इसी पद्धति से शिष्य के कठ को संस्कारित करने का कार्य गुरु बहुत ही कुशलतापूर्वक करते थे। प्रत्येक घराने के गुरु एवं उनके शिष्य-प्रशिष्य अपने घराने की परम्परा को आगे बढ़ाते हैं।

वैदिक काल में गुरु-शिष्य पद्धति के अन्तर्गत संगीत शिक्षण को आध्यात्मिकता के सर्वोच्च स्तर पर रखा गया। घराना पद्धति में भी संगीतज्ञों ने संगीत के उसी रूप को महत्व दिया। इस पद्धति के द्वारा भी संगीत शिक्षण मौखिक रूप से ही होता था। इस पद्धति की मुख्य-विशेषता कड़ा अनुशासन था। शिष्य के लिये गुरु जी आज्ञा का पालन व संगीत के प्रति समर्पण आवश्यक था। शिष्य की कठिन परीक्षा लेने के पश्चात् ही गुरु शिक्षा देने के लिये तैयार होते थे। कठिन परिश्रम एवं कड़ी साधना से निर्मित हुई अपनी गायकी को गुरु सीना-ब-सीना होकर शिष्य को गले में उतारने का प्रयास करते थे। गुरु व शिष्य के बीच पिता-पुत्र जैसा ही संबंध होता था। इस पद्धति में शिक्षा प्राप्त करने के लिये धैर्य, संयम, आस्था व श्रद्धा जैसे तत्व अनिवार्य होते थे। गुरु एवं शिष्य अपने घरानों के नियम, परम्परा, अनुशासन एवं आचार-विचार को अपनी कुल परम्परा के रूप में मान्यता और सम्मान देते थे।

विद्वानों ने घराना बनाने के आधारों में स्वर संग्रह भेद, स्वर रचना भेद, घटकों की प्रमुखता का भेद, अलंकार या वर्ण भेद और उच्चारण भेद को शामिल किया है। अलग-अलग घरानों में अपनी-अपनी गायकी की विशेषता होती है। यथा-ग्वालियर घराने के संगीत शिक्षण में सादगी और बोधगम्यता मुख्य विशेषताएँ रही हैं। इसके अतिरिक्त गंभीरता और अनुशासन के लिये यह घराना प्रसिद्ध रहा है। इस घराने में स्थायी-अन्तरा एक साथ गाते हैं फिर उसका विस्तार करते हैं। इसकी अन्य विशेषताओं में जोरदार तथा खुली आवाज का गायन, ध्रुपद अंग के ख्याल, सीधी-सपाट तानें, बोलतानों में लयकारी, गमक का सुंदर प्रयोग इत्यादि तत्व सम्मिलित होते हैं। इसी प्रकार आगरा घराना, जयपुर घराना, किराना घराना इत्यादि की भी अपनी स्वतंत्र विशेषताएँ हैं।

आगरा घराने की विशेषताओं में लागडांट और खुली एवं जोरदार आवाज में एक के बाद एक रोबीली एवं आक्रामक तानें इत्यादि हैं। इस घराने में ख्याल के साथ ध्रुपद-धमार और ठुमरी गाने की शिक्षा दी जाती है। इस घराने ख्याल गायन में ध्रुपद-धमार की लयकारी और नोम-तोम की आलापचारी का स्पष्ट प्रभाव रहता है।

इसी प्रकार किराना घराना ख्याल गायकी के लिये प्रसिद्ध रहा है। इस घराने की संगीत शिक्षा में सुरीलापन और चैनदार प्रमुख विशेषता है। इसकी गायकी में स्वर लगाव, लोच और मींड़ का काम अधिक पाया जाता है। शुद्ध स्पष्ट स्वर; रेशम के समान मुलायम, धीमी बढ़त इस घराने की विशिष्टता है। स्वर उच्चारण के वैचित्र्य पर अधिक बल देते हैं। इस घरने की गायकी में स्वर लगाने का अपना विशेष ढंग है।

जयपुर घराना मुख्य रूप से अप्रचलित रागों की प्रस्तुति के लिये अधिक प्रसिद्ध रहा है। इस घराने की गायकी में मींड़, गमक और कंपन के साथ ही आलापचारी पर विशेष ध्यान देते हैं। बंदिशों का सही प्रस्तुतिकरण, अलंकारिक तानें, अप्रचलित रागों की प्रस्तुति और ताल एवं लय पर पूर्ण अधिकार इस घराने की विशेषता है। खुली आवाज का गायन, गीत की संक्षिप्त बंदिश, वक्र तानें तथा आलाप की छोटी-छोटी तानों से राग की बढ़त किया जाता है। इस घराने में आलाप तालबद्ध होता है। घराने की गायकी में काफी दम-खम की आवश्यकता होती है।

घराना पद्धति में भी गुण-दोष थे। इस शिक्षण पद्धति में सामान्य विद्यार्थियों के प्रवेश नहीं मिल पाता था, क्योंकि गुरु के वंशज अथवा अत्यंत प्रतिभाशाली विद्यार्थी का ही चयन होता था। इस पद्धति में प्रशिक्षण की कोई समय सीमा एवं पाठ्यक्रम नहीं होता था। सब कुछ गुरु पर निर्भर होता था। कई-कई वर्षों तक शिष्य को गुरु गृह पर ही रहना होता था, तब उन्हें संगीत ज्ञान प्राप्त होता था। कई बार शिष्य गुरु का अनुसरण करने के कारण गुरु के गुण के साथ ही दोष को भी ग्रहण कर लेते थे। गुरु से कोई भी प्रश्न करना अनुशासनहीनता माना जाता था। इस शिक्षण

पद्धति में संगीत के प्रायोगिक पक्ष पर अधिक ध्यान देते थे और शास्त्र पक्ष से अनभिज्ञता रहती थी। उपरोकत संकीर्णताओं के कारण संगीत शिक्षा प्रमुख और योग्य शिष्यों को दी जाती थी। किसी अन्य को शिक्षा न देने के लिये शिष्य से वचन लिया जाता था। इस प्रकार धीरे-धीरे यह पद्धति का प्रचार कम होने लगा।

आज की परिवर्तित सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों में घरानों के समर्थकों व कर्णधारों को अपने-अपने घराने बनाये रखने और उन्हें आगे बढ़ाने के लिये अत्यंत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उन्हें अपने घराने की शिक्षा अपने परिवार तक सीमित रखना भी असंभव हो रहा। आज की व्यवस्था में संगीत शिक्षण घरानों तक सीमित नहीं रहा यह सुविधा संगीत के प्रचार-प्रसार के लिये संचालित संस्थाओं द्वारा सुलभ हो रही है। अंग्रेजों के शासन के साथ ही सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन हुआ। संगीत की शिक्षा गुरुकुल पद्धति के स्थान पर स्कूलों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में प्रदान की जाने लगी फलस्वरूप संगीत जन-जन तक पहुँचने लगा। इस प्रकार संगीत का शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से उत्तरोत्तर विकास होने लगा। संगीत की परिक्षाओं में उत्तीर्ण होने पर उपाधियाँ दी जाने लगीं। संगीत शिक्षण के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुये। संस्थागत शिक्षण पद्धति में संगीत में अनेक संसाधन उपलब्ध हुये। आधुनिक काल में मौलाबख्श, पं0 भातखण्डे, पं0 पलुष्कर जैसे महान् संगीत चिंतकों के अथक प्रयासों के फलस्वरूप संस्थाओं में संगीत को विशेष स्थान दिया गया। इनके व्यक्तिगत प्रयास के कारण कई संगीत विद्यालयों की स्थापना की गई। आधुनिक काल में संगीत शिक्षण एवं संगीत के प्रचार-प्रसार में संस्थागत शिक्षण प्रणाली अति महत्वपूर्ण साबित हुई। इसी परिणामस्वरूप भारत में आज संगीत विषय की शिक्षा हेतु विश्वविद्यालय की भी स्थापना हुई है। इस शिक्षक पद्धति में प्रायोगिक एवं शास्त्र पक्ष दोनों की समान शिक्षा दी जाती है। इसमें पाठ्यक्रम निर्धारित होते हैं। संस्था में प्रवेश हेतु प्रवेश परीक्षा ली जाती है।

इस शिक्षण पद्धति के साथ दोष भी हैं। इस पद्धति में पाठ्यक्रम व कक्षा अवधि निर्धारित होने के कारण पाठ्यक्रम यथाशीघ्र पूर्ण किया जाता है। समयानुसार परिक्षायें निर्धारित की जाती हैं। विद्यार्थियों का भी ये उद्देश्य रहता है कि प्रमाण-पत्र प्राप्त कर नौकरी प्राप्त की जा सके, परन्तु संगीत मुख्यतः एक प्रायोगिक विषय है जिसकी सूक्ष्म जानकारी अत्यंत आवश्यक है।

निष्कर्ष

कालक्रम के अनुसार संगीत शिक्षण पद्धतियाँ सभी महत्वपूर्ण रहीं। चाहे वह गुरुकुल पद्धति हो, घरानेदार संगीत प्रशिक्षण अथवा संस्थागत शिक्षण पद्धति हो। सभी शिक्षण पद्धतियों में संगीत का प्रशिक्षण यथासंभव दिया जाता रहा है। प्राचीन गुरु-शिष्य परम्परा में निहित श्रद्धाभाव, सेवाभाव, एकाग्रता, साधना, लगन आदि की महत्वपूर्ण भूमिका थी। संस्थागत प्रशिक्षण में निर्धारित पाठ्यक्रम को समयानुसार पूर्ण करने में बहुत समय लग जाता है, किन्तु इसका दूसरा पक्ष भी है। आज संगीत जनसाधारण तक सर्वसुलभ हुआ है। ‘‘संगीत के क्षेत्र का व्यापक विस्तार हो गया है और श्रोताओं की संख्या भी बढ़ गयी है।’’8

सन्दर्भ

1. मिश्रा, पं0 विजय शंकर (2019), अनहद लोक पत्रिका, व्यंजना (आर्ट एंड कल्चर सोसाइटी), सम्पादक-शुक्ला, डॉ0 मधुरानी, प्रयागराज, पृ0 99
2. कपूर, तृप्त (1989), उत्तरी भारत में संगीत शिक्षा, हार्मन पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ0 26
3. वही, पृ0 26
4. वही, पृ0 30
5. वही, पृ0 34
6. वही, पृ0 19
7. रानी, डॉ0 भावना (2008), शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता में सांगीतिक संस्थाओं का महत्व, संजय प्रकाशन, दिल्ली, पृ0 22
8. चौबे, डॉ0 सुशील कुमार (1975), हमारा आधुनिक संगीत, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ0 138